P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

अनारों : स्लम तथा नारी संघर्ष का यथार्थ दस्तावेज

सारांश

आजाद भारत में कायापलट का सपना दिखानेवाली अर्थनीति एवं राजनीतिक विकास के जिस अवधारणा को लागू किया है, उससे ग्रामीण रोजगार एवं अर्थव्यवस्था धाराशायी हुई हैं, तो दूसरी ओर एक बड़ी आबादी विस्थापित होकर नगरों–महानगरों की ओर पलायन के लिए अभिशप्त हुई है। आजादी से लेकर अब तक सारा विकास नगरों–महानगरों तक सिमट गया है। लिहाजा गाँवों से और कृषि से लोगों का मोहभंग हुआ है और एक बड़ी आबादी महानगरों, कारखानों, बाजारों, मंडियों की ओर भागती गयी है। विशाल जनसंख्या के दबाव के कारण नगरों–महानगरों में जैसे–तैसे सिर छुपाना, तन ढकना, रुखा–सुखा खाकर जिंदगी को ढोये जाना शहरों के स्लम में जी रहे लोगों की नियति बनी है। स्वतंत्र भारत की सरकारी नीतियों और योजनाओं ने गाँवों को रहने लायक बनाया और न उजड़कर शहरों में आये लोगों ने लिए आदमी आदमी की तरह जीने की व्यवस्था की। कुल मिलाकर पंचवर्षीय योजना की कागजी आवाजाही, व्यापक आबादी की भूमिहीनता–रोजगारहीनता, भूमिसुधार का नकली प्रयास, क्षेत्रीय शोषण एवं विषमता का आंतरिक उपनिवेशवाद, राजनीतिक सरोकार का संकुचन, उद्योग की नगरीय केंद्रीयता,विसंगत कृषिनीति के कारण कृषिकार्य का लाभकारी होते जाना और प्रशासनतंत्र की दृष्टीहीनता आदि ने भारतीय लोकतंत्र के सामने प्रश्नचिन्ह खड़े किये हैं इन प्रश्नचिन्हों ने स्लम को फैलाव दिया है।

मुख्य शब्दः स्लम जीवन, निम्नमध्यवर्ग, स्त्री, गरीबी, विपन्नता।

प्रमोद कुमार प्रसाद
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग,
जे.के. कॉलेज,
पुरुलिया, पश्चिम बंगाल

प्रस्तावना

साठोत्तरी महिला कथाकारों में मंजूल भगत का महत्वपूर्ण स्थान है। मंजुल भगत का रचनाकाल लगभग चार दशकों का है। उनकी प्रमुख विधा कहानी है और इसी से वे साहित्य जगत में प्रवेश करती है, परंतु उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने अपने लेखन प्रतिभा का परिचय दिया है और 'अनारों' जैसे उपन्यास की रचना करके साहित्य जगत में ख्याति प्राप्त की। यह उपन्यास साप्ताहिक हिंदुस्तान में १६७६ में प्रकाशित हुआ था जो मंजुल भगत की सृजनात्मकता को नई पहचान देता है। कमल किशोर गोयनका ने इनकी सृजनशीलता पर स्पष्ट लिखा है –" 'अनारो' भी मंजुल भगत की मास्टरपीस रचना है और वह लेखिका के सृजन–संसार की मानक कृती मान ली गयी है।"[1]

साहित्यावलोकन

देश विभाजन के बाद स्लम जीवन की बनावट में एक नया आयाम जुड़ा है। इस तरह औपनिवेशिक सरकारों या स्वतंत्र भारत को सरकारों की आम जन की अनदेखी करनेवाली नीतियों एवं योजनाओं के कारण शहरीकरण और आद्योगीकरण प्रगति की प्रक्रिया में चाहे जितने पड़ाव आयें हों,उनके दो त्रासद परिमाण सामने आयें हैं – उजड़ते हुए गाँव और शहरों में फैलती गयी झोपड़पट्टी यानी बजबजाते स्लम के नर्ककुंड। स्लम जीवन की त्रासदी और विपन्नता को केंद्र में रखकर विभिन्न रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के मार्फत से उसके सत्य को उजागर किया है पर मंजुल उसके तलछट में जाकर जिस वारीक रूप में सर्वेक्षण करती हैं वह अन्यतम है। (2017) में डॉ मैना जगताप ने 'मंजुल भगत के कथा साहित्य में नारी' में लिखा है – "उनका उदेश्य मुख्य रूप से निम्नमध्यवर्गीय स्त्री के यथार्थ को स्पष्ट रूप में दिखलाना है।"[16]

अध्ययन का उद्देश्य

भारत में आजादी से पहले यानी 1850 के आसपास स्लम की शुरुआत हो गयी थी, लेकिन सामाजिक,आर्थिक,राजनीतिक,समस्याओं के रूप में इसका अध्ययन–सर्वेक्षण 1950 के बाद आरंभ हुआ। ठेठ असली गरीबी, तस्लीम को शिक्षा, दुर्गंध, बीमारी, अपराध, नशाखोरी इन झोपड़पट्टी की पहचान रही। फ्लाईओवर के नीचे ही संकरी नुमा खोखला वॉइस पड़ी पाइपलाइन ऊंची ऊंची

इमारतें के पिछवाड़े में उत्पाद के लिए छोड़ गया खाली हिस्सा और शहर की गंदगी को बाहर ले जाने वाली नालों के दोनों ओर बनी समानांतर पटिया यह सब स्लम के विस्तार के लिए महफूज जगह रही है। नगरों–महानगरों में दो परस्पर विरोधी जीवन संस्कार दिखाई देता है। आसमान से बात करती बहुमंजिल इमारतें, साधनों की प्रचुरता, भोग का वातावरण तथा समृद्धि की चकाचौंध है और दूसरी ओर इस चकाचौंध के पार्श्व में अंधकार में डूबी, कराहती–दम तोड़ती मानवीय अस्मिता तथा उसके मलबे से उभरते जीवन–दृश्य हमारी संवेदना को झकझोरते हैं। मंजुल के अनारों उपन्यास को समझने के क्रम में इसी संवेदना को मूल उदेश्य बनाया गया है।

भारत में उद्योग–धंधों के विकास के साथ ही भारतीय शहर औ)ोगिक नगरों में तब्दील होने लगे। गाँवों में रहने वाले निम्नवर्ग के लोगों की न तो सामाजिक मर्यादा की सुरक्षा की कोई निश्चिंतता थी और न ही आर्थिक सुदृढ़ता की कोई आशा। फलतः कल–कारखानों के स्थापित होते ही ये वर्ग अच्छे भविष्य की तलाश में शहरों की ओर बड़ी तेजी से पलायन करने लगे। भागे तो मध्य और उच्चवर्ग के लोग भी, पर उन्हें वहाँ जमीन तलाशने में कोई परेशानी नहीं हुई। परंतु गाँवों से निम्नवर्ग का जो काफिला पलायन किया उसे वहाँ (शहरों) सिर छुपाने की कोई स्थायी व्यवस्था न हो पाने के कारण फ्लाई ओवरों के नीचे दबड़े नुमा खोह,लावारिस पड़ी पाईप लाइनों, ऊँची–ऊँची इमारतों के पिछवाड़े के फूटपाथ के लिए छोड़ा गया खाली स्थान तथा रेल लाईनों के किनारे के खाली जगहों पर अपने बाल– बच्चों के साथ जीवन बिताने के लिए बाध्य होना पड़ा। अमूमन ऐसी ही परिस्थितियों से उभरता है 'स्लम' अर्थात् जिसे शहर की गंदी बस्तियां कहकर हम एक उपमा देते है।

स्लम यानी झोपड़पट्टी वैसे तो विश्व स्तरीय परिघटना है लेकिन अत्यंत पिछड़े और विकासशील देशों के विभिन्न हिस्सों में इसका भयावह चेहरा दिखायी देता है। इतिहास के पन्ने गवाह हैं कि औपनिवेशिक दौर में ही दुनिया के विभिन्न उपनिवेशों में बड़े–बड़े स्लम बन गये थे। एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देशों में वहाँ की औपनिवेशिक सरकारों ने गरीबों–मेहनतकशों–बेघरों को मुख्य नगरीय– महानगरीय क्षेत्रों से दूर रखा। औपनिवेशिक शासक वर्ग ने अपने निकटस्थ एवं सहयोगी अभिजात्यवर्ग को सर्व सुविधा संपन्न तथा सौंदर्यीकृत आवासी परिवेश उपलब्ध कराने के लिए गरीबों की गंदी बस्तियों को उजाड़कर शहर से बाहर कर दिया। इसका सीधा परिणाम यह हुआ कि नगरों–महानगरों के बाहर यानी प्रवेश–द्वार के आसपास जहाँ भी कूड़ा–कचड़ा के ढेर पर समतल–सी जगह बनाने की गुंजाइश दिखी, वहाँ रिक्शावालों, ठेलावालों, कचरा चुननेवालों, दिहाड़ी करनेवाले, पाँश काँलोनी की घरों में झाडू–बर्तन करनेवालों ने या दूसरी जगहों से विस्थापित होकर आये लोगों ने जैसे–तैसे सिर छुपाने के लिए झुग्गीयाँ बना ली। और धीरे धीरे यही उनका स्थायी निवास बन गया।

महानगर की चकाचौंध और तामझाम में प्रायः उन गंदी बस्तियों की ओर सभ्य समाज ध्यान नहीं जाता,जो उन जिन्दगियों का अनिवार्य हिस्सा है। समाज के प्रति जागरुक आधुनिक कथाकारों की दृष्टि इन गंदी बस्तियों की ओर गई। कुछ कथाकारों ने इन गंदी बस्तियों का चित्रण सामान्य तौर पर किया तो कुछ ने इन गंदी बस्तियों के जीवन का अत्यंत सूक्ष्मता और गंभीरता से चित्रण किया है। जिन कथाकारों ने इन गंदी बस्तियों का चित्रण सूक्ष्मता और गंभीरता से किया उसमें राजकमल चौधरी (एक अनार :एक बीमार), भीष्म साहनी (बसंती), जगदंबा प्रसाद दीक्षित (मुर्दाघर), जगदीश चंद्र (नरक कुंड में बास), चित्रा मुद्गल (भूख), मधु काकरिया (पटाखों), उदय प्रकाश (दिल्ली की दीवार) मंजूल भगत (अनारों) आदि प्रमुख हैं।

मंजुल भगत का साहित्य सामाजिक पक्षधरता का साहित्य है। इनका संपूर्ण कथा –साहित्य मानवीय सरोकार से जुड़ा हुआ है। वे जिस कुशलता से घर, परिवार और संबंधों को कथात्मक सौन्दर्य में बांधती है उसी कुशलता से बाहर के निम्नवर्ग की उस दबी–कुचली जिन्दगी के आर्थिक दबावों और तनावों को भी रेखांकित करती हैं। " मंजुल भगत का स्त्री भरापूरा समाज है। वह पूरी समाज को जीती है। उनके स्त्री पात्र संबंधों की मधुरता की अपेक्षा कटुरता और विसंगतियों में जीते हैं और हर परिस्थितियों में अपनी जीवटता एवं जिजीविषा को बनाए रखते हैं। मंजुल भगत की स्त्रियाँ परम्परा और आधुनिक जीवन मूल्यों के द्वद्व और तनाव में घिरी हैं।"[2]

'अनारों' मंजुल भगत का बहुचर्चित उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंने दिल्ली की स्लम बस्ती में रहने वाली अनारों के संघर्षमय जीवन के माध्यम से स्लम बस्तियों में रहने वाली तमाम स्त्रियों के जीवन–संघर्ष को पूरी ईमानदारी के साथ रेखांकित किया है। मंजुल ने उपन्यास की सृजन–प्रक्रिया के संबंध में स्वतः लिखा है – "यह एक निम्नवर्गीय स्त्री की कहानी है, जो घर–घर चौका–बर्तन कर गुजारा करती है, मदनगीर की झोपड़पट्टी में अपने दो बच्चों और शराबी नकारा पति के साथ रहती है, उसी का नाम अनारों। अनारों एक जीवट वाली, संघर्षशील स्त्री है, जो कभी हार नहीं मानती है। उसे जीवन से भरपूर लगाव है और यह जुड़ाव जीने के प्रति उसके मोह और उत्साह को कभी मरने नहीं देती।"[3]

शादी से पहले सुखमय दांपत्य जीवन एवं सुखी परिवार का जो ख्वाब अनारों ने देखा था वह कभी पूरा नहीं हो सका। उसके चारों ओर का वह सब जाने कब टूट–फूट और छीट चुका है,जो एक औरत को सुरक्षित और स्थायित्व का बोध कराता है। रामचंद्र तिवारी का कहना है कि – "निम्न मध्यवर्गीय नारी जीवन को उकेरने में मंजुल भगत अद्वितीय हैं। उन्होंने नारी जीवन के त्रासदी को अनेक संदर्भो में उभारने की कोशिश की है। उनके नारी पात्र मुख्यतः मध्यवर्गीय परिवारों में चौका बर्तन या नौकरी करने वाले वर्ग से संबद्ध है। इनके दुःख दर्द के चित्रण में लेखिका को अपूर्व सफलता मिली।"[4] घरगृहस्थी, कल्पना, संरक्षक के रूप में अपना एक पुरुष, मायके या ससुराल का सुरक्षा, अपनी जमीन जायदात, कुछ भी उसके पास वैसा नहीं है, जैसा परंपरा ने देने का वादा किया था। उसकी वास्तविक स्थिति का चित्रण

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

करती हुई मंजुल लिखती हैं कि – "दो रोज वह खड़ी चारपायी पर खेस डाल उसकी ओट में दरी पर पड़ी–पड़ी थरथराती रही थी। खुला जाड़ा जब सहन न हुआ, तब अड़ोस–पड़ोस की मदद से घास–फूस, बोट–बल्ली और टीन–लकड़ी सब कुछ जुटाकर एक झुग्गी छा ली थी। नींव डालने के पश्चात अब तक वह अकेले ही उस घर को मजबूत बनाते आयी है। कभी पलट कर नंदलाल की ओर न देखा।"[5]

अनारों एक जीवंत, सघर्षशील स्त्री है, जो कभी हार नहीं मानती। उसे जीवन से भरपूर लगाव है और यह लगाव जीने के प्रति उसके मोह और उत्साह को कभी मरने नहीं देता। इस तरह का छुट्टा काम करने वालियों का चलन आज घर–घर में है। उन सब की करीब एक सी स्थिति है। अंतर है तो उसके चरित्र की संरचना, भावात्मक अपेक्षा, जूझने की क्षमता और जीवन दृष्टि में। यही अंतर अनारों को आम होते हुए भी विशिष्ट बना देती है। जहाँ चित्रा मुद्गल की सावित्री और त्रिशंकु की मां बेबस हो चिखती–चिल्लाती रहती हैं। वहाँ मंजुल की अनारो इन झंझावतों में भी अपना मार्ग ढूंढ लेती है। उसके इस जीवट और संघर्षशील व्यक्तित्व को रेखांकित करते हुए मंजुल जी ने लिखा है – "साँझ सबेरा उनके घरों में होता होगा। अपनी तो बस, या तो भोर होती है, या फिर रात। तड़के उठो, दिशा–जंगल जाओ। बंबो से पानी भर कर लाओ। गंजी और छोटू के लिए रोटीयाँ थापो।..... फिर झोला थाम और चल पड़ा अनारों काम पे।"[6]

झुग्गी–झोपड़ीयों में रहने वाली स्त्रियों के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि उसके श्रम का मूल्य न तो समाज देता है न ही पति। अनारों भी इससे अलग नहीं है। अनारों का संघर्ष केवल बहरी स्तर तक ही केन्द्रित नहीं है प्रत्युत वह पारिवारिक और सामाजिक स्तर तक फैला हुआ है। उसके अपने जीवन में हर किसी ने उसका इस्तेमाल भर किया है, वे संभ्रांत कलोनियों की गृहिणियों हों, या उसका पति। इस सत्य की अभिव्यक्ति मंजुल भगत ने अनारों के माध्यम से बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है। अनारों कहती है– " जितनी तरह के घर, उतनी ही रकम की मालकिनी। उतनी ही हिदायते–नसीहतें। किसी के यंहाँ पहुँचाने में थोड़ी देर हो जाए तो वे आग बबूला हो जाती है। अब आई हैं ? तेरे लिए मैं तमाम काम छोड़कर घर की चोकीदारी करती रहूँगी। अच्छी डयूटी लगा रखी है मेरी।"[7] दूसरी तरफ यदि पति को समय पर भोजन न मिले तो उसकी धौस अलग सहनी पड़ती है। यथा – "क्यों री, यह कैसी रांड रसोई बना रखी है ? मैं भगवा पहनकर जिस रोज निकल जाऊंगा, उस रोज पकाइयों पानी में साग।"[8]

उत्तर आधुनिकता के इस दौर में संभ्रांत समाज का एक परिवर्तित रूप सामने आया है। एक ओर जहाँ परम्परा से चले आ रहे संयुक्त परिवार का विघटन हुआ है तो वहीँ दूसरी ओर सामाजिक और पारिवारिक संबंध के परम्परागत रूपों में भी परिवर्तन घटित हुआ है। सभी मानवीय संबंधों के मोहपाश और परंपरा से मुक्त होकर आज व्यक्ति अधिक से अधिक आत्मकेंद्रित होता जा रहा है। यंहाँ तक की पिता–पुत्र,माँ–बेटी,तथा पति–पत्नी जैसे अंतरंग संबंधों में भी एक अलगाव और उत्तरदायित्व का अभाव देखा जा सकता है। ऐसे समय में अनारों जैसी चरित्र की सृष्टी करना निश्चित ही भारतीय मानसिकता को दर्शाता है। मंजुल भगत भारतीय स्त्री की प्रतिरूप है। उसमे भारतीय स्त्री के गहरे संस्कार थें। वे भारत की संस्कृति और यंहाँ की मिट्टी की उपज थीं, उसमें गहरा अस्तित्वबोध एवं स्त्री–स्वातंर्त्य की चेतना थी। कमल किशोर गोयनका ने लिखा है – "मंजुल ने अपनी स्त्री को भारतीय ही बनाकर रखा। वे स्वयं भारतीय स्त्री की प्रतिरूप थीं और उनके स्त्री–पात्र भी अपने गुणावगुणों के साथ भारतीय ही हैं। मंजुल ने इस भारतीयता में से ही अपनी नई स्त्री को खोज और उसे साहित्य में अवतरित किया।"[9] अपनी इसी सोच के तहत लेखिका अनारों के माध्यम से उस अलगाव और परायापन के बोध को समाप्त कर एक सुखमय पारिवारिक जीवन की स्थापना करना चाहती है।

जात–विरादरी में अपने इज्जत को बनाए रखना तथा दिन–रात खटकने वाली अनारों के पास मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं आया और न ही भविष्य की कोई स्पष्ट कल्पना। सिर्फ कुछ रंगीन सपने हैं, अपना एक घर बसाने के, एक मर्द के साथ सुखी गृहस्थी चलाने की, बेटी की धूमधाम से शादी करने, टोले–मोहल्ले वालों को भरपेट जिमाने के। ये सभी स्वप्न लगातार टूटते रहते हैं। उसका शराबी निखट्टू पति पहले एक रखेल ले आता है, फिर अनारों को गर्भवती छोड़कर अपनी रखेल के साथ चल देता है। दुत्कारे जाने पर वापस आता है, और दूसरी बार पुनः उसे गर्भवती कर बम्बई भाग जाता है। पर अकेली अनारों भीतर–बाहर तमाम लड़ाईयां लड़ती हुई अपने स्त्रीत्व, मातृत्व और पारंपरिक सत्य को नहीं छोड़ती। पति जब कभी लौटता है तो अनारों तमाम शिकवे भुलाकर अपना सब कुछ उसके आगे परोस देती है। अपनी इसी आकांक्षा को व्यक्त करती हुई अनारों कहती हैं कि – "उसका जी चाहता है ठीक ढंग से आदमी उसके पास बैठ कर हँसे–बोले, उसमे में न गाली–गलोग हो, न सौत। न रूपये–पैसे की हाय–हाय हो, न ठरे की गंध। बस दुनियां जहान की इसी बाते हो, जिसमें न कुढ़न हो, न जलन।"[10] यद्यपि उसे अपनी इस सोच में अधिक सफलता नही मिल पायी,पति फिर भी वह उसी मृतप्राय परंपरा को बंदरिया के बच्चे की तरह चिपटाए हुए है। वर्तमान दौर में जहाँ स्त्री के अधिकारों और स्वतंत्रता को लेकर तमाम तरह के विमर्श जारी हैं, ऐसे समय में अनारों को परंपरवादी दिखाना कहाँ तक तर्क संगत है। जब हम इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार करते हैं तो पाते हैं की मंजुल भगत ने अपनी एक स्त्री दृष्टी विकसित की थी जो पश्चिम की स्त्रीवादी आन्दोलन से प्रभावित नहीं था। मंजुल जी स्वयं भारतीय और भारतीय परिपेक्ष्य में वे हर समस्या का समाधान चाहती थी।कमल किशोर गोयनका ने इस संबंध में लिखा है – "उन्होंने अपना एक स्त्री–विमर्श विकसित किया था। इसमें पश्चिम के स्त्रीवादी आन्दोलन का प्रत्यक्ष रूप से कोई प्रभाव नहीं था।"[11] मंजुल जी ने इस भारतीयता से ही

अपनी नई स्त्री की खोज की और उसे साहित्य में स्थापित किया। अनारों में उनके इसी सोच का प्रतिफलन हुआ है। अपने इसी पारंपरिक सोच के कारण ही वह पति द्वारा बार–बार ठगी जा कर भी उसके प्रति कोई दुराग्रह नहीं रखती। क्यों ? क्योंकि कही उसे लगता है कि केवल परम्परा का गहरा दबाव ही उसके पैर टेल की जमीन बरकरार रखे हुए है। इसीलिए वह कहती है उसकी करनी उसके साथ है और मेरी करनी मेरे साथ। पति की तरह ही बच्चों के प्रति भी उसकी सोच बड़ी उदार है। अपने बच्चों के पठन–पाठन से लेकर उसके मान–सम्मान की रक्षा करने में कोई कसर नहीं छोड़ती है। वह सामाजिक मर्यादा के क्षेत्र में किसी भी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं है। "मंजुल सबके प्रति संवेदनशील थीं। परन्तु अपने प्रति वे निष्ठुर बाधाओं और प्रतिकूलताओं में स्त्री की गरिमा के साथ जीवन जीया और और कभी पराजित नहीं हुई। उनके साहित्य की स्त्रियाँ भी कभी पराजित नहीं होती।" [12] यही कारण ही की टीचर जी प्रति अपार श्रद्धा रखते हुए भी वह टीचर जी द्वारा सुझाये गए शादी वाले प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है। अनारों कहती है – "चंदा–दान पर अनारों की बेटी का व्याह ? यही करना होता तो दोनों बच्चों के हाथ में भीख का कटोरा थमा कर निकाल देती। यू अपनी हडिड्यो का चुरा बना कर न पालती उन्हें। तुम करवा लोगी अपनी बेटी का व्याह इस तरह ?।"[13] अनारों सिर्फ टीचर जी के ही प्रस्ताव को ही नहीं ठुकराती वरन बिना दहेज और पिता की अनुपस्थिति में लड़की व्याहने के उसके ससुराल वालों द्वारा दिए गए प्रस्ताव को भी ठुकरा देती है। बेटी की शादी की पूरी तैयारी वह अकेले ही करती हैं। अनारों के वैशिष्टय पर विचार करते हुए मृणाल पांडे कहती हैं कि – "हमारे कथा साहित्य में इधर जब से नारीवाद को को–ब्रांडिग जनवादी और दलित दृष्टी से हुई है, स्त्रियाँ खास कर कर गरीब तबके की स्त्रियाँ के जीवन पर कथा साहित्य का एक विराट शैलाब सामने आ गया है। इसमें हर प्रताड़ित स्त्री को जुझारू,परम्परा भंजक,मूर्तिमान विद्रोही के रूप में दिखया जाता है। पर यह अनारों के तरह के पात्र नहीं,जिन्हें उनका जीवन संघर्ष और जिजीवषा विशिष्ट बनाते हैं। अनारों की खासियत यही है कि वह मुर्ख,बावली,तेजस्वी और बदजुबान जैसी भी है सीधे उस जीवन संघर्ष की उपज है,जिसके राष्ट्रव्यापी,विश्वव्यापी नियम उसने नहीं गढ़ा। वह उससे बस जूझ रही है, अपनी गरिमा और अपनी जिजीवषा के चीथड़े जैसे–तैसे बचाती हुई।...... अनारों मनुष्य की अन्तरात्मा पहचानने का पौरूषमय उपक्रम नहीं उद्दाम तरंगो से भरे जीवन सागर में जूझती हुई एक ऐसी सर्वहारा स्त्री की महागाथा है जिसका संघर्ष ही उसका संदेश है। वह न तो इतिहास को बदलने की की हौसला और शक्ति रखती है और न ही इतिहास से मतलब।"[14]

मंजुल जी अनारों के माध्यम से स्लम बस्ती में रहने वाली स्त्रियों के संघर्ष को समग्रता में प्रस्तुत करने में पूरी तरह सफल रही हैं। अनारों के माध्यम उन्होंने जहाँ स्लम बस्तियों में रहने वाली स्त्रियों की दबी–कुचली जिन्दगीं को रेखांकित किया हैं,वहीँ झुग्गी–झोपड़ी का नाम सुनते ही संभ्रांत समाज की उनके प्रति जो एक नकारात्मक दृष्टि परंपरा से बन गयी थी, लेखिका ने अनारों जैसे चरित्र की सृष्टी कर उस मिथ को तोड़ना चाहा है। कमल किशोर गोयनका ने इस मिथ के संदरव में लिखा है –" सबसे बड़ी विशेषता यह है कि मंजुल के स्त्री–पात्र किसी प्रकार के अपराध–बोध और कुंठा से मुक्त है। स्त्री के साथ अपराध–बोध का जो मिथक बना हुआ था, वह इन स्त्री–पात्रों में नहीं मिलेगा। स्त्री की यह मुक्ति एक बड़ी उपलब्धि है।"[15]

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कह सकते है कि मंजुल भगत ने अपने उपन्यास अनारों में स्लम जीवन की त्रासदी के माध्यम से नारी जीवन की यथार्थता को बड़ी गंभीरता और संशलिष्टा के साथ उजागर किया है। जिसमें नारी जीवन की मुक्ति कामना साफ–साफ दृष्टिगत होती है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *सं० गोयनका कमल किशोर, मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–2, किताबघर प्रकाशन – 2013, पृष्ट सं. 7*
2. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–2, किताबघर प्रकाशन –2013,पृष्ट सं. 18*
3. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–2 किताबघर प्रकाशन –2013, पृष्ट सं. 7*
4. *तिवारी रामचंद्र, हिन्दी गद्य का विकास, विश्वविद्यालय प्रकाशन,वाराणसी,2016 पृष्ट सं. 326*
5. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–1 किताबघर प्रकाशन –2013, पृष्ट सं 99*
6. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–1 किताबघर प्रकाशन –2013, पृष्ट सं. 68*
7. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–1, किताबघर प्रकाशन –2013,पृष्ट सं. 70*
8. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–1, किताबघर प्रकाशन –2013, पृष्ट सं. 68*
9. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–2 किताबघर प्रकाशन –2013,पृष्ट सं. 19*
10. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य –1 किताबघर प्रकाशन –2013,पृष्ट सं. 77*
11. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–2 किताबघर प्रकाशन –2013, पृष्ट सं. 19*
12. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–2, किताबघर प्रकाशन –2013, पृष्ट सं. 19*

P: ISSN No. 2231-0045 RNI No. UPBIL/2012/55438 VOL.-6, ISSUE-4, May- Supplementary Issue - 2018
E: ISSN No. 2349-9435 Periodic Research

13. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–1, किताबघर प्रकाशन –2013,पृष्ट सं. 84*
14. *सिंह सं. नामवर आधुनिक उपन्यास, भाग–2, राजकमल प्रकाशन– 2010, पृष्ट सं. 294*
15. *सं० गोयनका कमल किशोर,मंजुल भगत का समग्र कथा साहित्य–2 किताबघर प्रकाशन –2013, पृष्ट सं. 18*
16. *जगताप डॉ मैना, मंजुल भगत के कथा साहित्य में नारी, विनय प्रकाशन, पृष्ट सं. 97*